R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685   Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-10 अक्टूबर 2021

मङ्गलायतन

अक्टूबर का E - अंक

उत्तर प्रदेश हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश श्री मुनिश्वरनाथ भण्डारी तीर्थधाम मङ्गलायतन के दर्शन करते हुए

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-10 (वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077) अक्टूबर 2021

(6) ये धर्म हमारा है....

ये धर्म हमारा है, हमें अति प्यारा है,
हम है इसी की शान में ॥ टेक ॥

सिद्धों ने फरमाया है तू बन सकता भगवान है,
इतनी तुझमें शक्ति है पा सकता केवलज्ञान है।
थोड़ा सा श्रद्धान कर ज्ञान कर गौरव जहान का ॥1 ॥
ये धर्म हमारा...

अनेकान्त और वीतरागता जैनधर्म के प्राण हैं,
द्रव्यदृष्टि से देखे तो सब प्राणी सिद्धसमान है
अब तो चेतन जान लो मान लो मार्ग निर्वाण का ॥2 ॥
ये धर्म हमारा...

तीर्थंकरों की देशना और उनका ये सन्देश है,
प्रथम अन्तरंग नग्नता फिर बाह्य दिगम्बर वेष है।
ये ही सच्चा मार्ग है-२ भेदज्ञान का ॥3 ॥
ये धर्म हमारा है, हमें अति प्यारा है,
हम है इसी की शान में ॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्री अंश जैन
सुपुत्र
श्री अमितचतरसेन जैन
C/o. **श्री सी. एस. जैन,**
88 टैगोर विला, टैगोर कॉलोनी,
देहरादून - 248001
(उत्तरांचल)

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

क्या - कहाँ

भगवान महावीर 5
समयसार का जो अभ्यास 12
श्री समयसार नाटक 14
श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान 27
आचार्यदेव परिचय शृंखला 29
प्रेरक-प्रसंग 31
जिस प्रकार-उसी प्रकार 32
समाचार-दर्शन 33

भगवान महावीर

दीपावली..... मंगल दीपावली......

कार्तिक कृष्णा अमावस्या का प्रातःकाल......

सारा देश आज अपार आनंदपूर्वक यह दीपावली मना रहा है..... काहे का है यह मंगल दीपोत्सव ?

पावापुरी का पवित्र धाम आज हजारों दीपों की जगमगाहट से शोभायमान है। महावीर भगवान के चरणों में बैठकर भक्तजन उनके मोक्षगमन का स्मरण कर रहे हैं और उस पवित्र पद की भावना भा रहे हैं। अहा, भगवान आज संसार बंधन से छूटकर अभूतपूर्व सिद्धपद को प्राप्त हुए। इस समय वे सिद्धालय में विराजमान हैं। पावापुरी में जलमंदिर के ऊपर लोकाग्र में भगवान सिद्धपद में विराजमान हैं।

कैसा है सिद्धपद ? संतों के हृदय में अंकित उस सिद्धपद का वर्णन करते हुए श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि:—

विनकर्म, परम, विशुद्ध जन्म, जरा, मरण से हीन है।
ज्ञानादि चार स्वभावमय अक्षय अछेद, अछीन है॥१७७॥
निर्बाध अनुपम अरु अतीन्द्रिय, पुण्य-पाप विहीन है।
निश्चल, निरालंबन, अमर पुनरागमन से हीन है॥१७८॥

मात्र सिद्धदशा में ही नहीं, परंतु उससे पूर्व संसार अवस्था में भी जीवों में ऐसा स्वभाव है... वह दर्शाते हुए कहते हैं कि—

हैं सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो हैं अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं॥४७॥
विनदेह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

महावीर भगवान ने आज के दिन ऐसा महिमावंत सिद्धपद प्राप्त किया।

वे महावीर भगवान कैसे थे और किसप्रकार उस महान सिद्धपद को प्राप्त किया? कि जिसके आनंद का उत्सव सारा देश दीपक के प्रकाश द्वारा आज भी मना रहा है।

पावापुरी भगवान महावीर

हम सबकी भाँति वे महावीर भगवान भी एक आत्मा हैं। अपनी ही भाँति पहले वह आत्मा भी संसार में था। अरे, वह होनहार तीर्थंकर समान आत्मा भी जब तक आत्मज्ञान न करे, तब तक अनेक भवों में संसार भ्रमण करता है। इसप्रकार भवचक्र में भटकते-भटकते वह जीव एक बार विदेहक्षेत्र में पुण्डरीकिणी नगरी के मधुवन में पुरुरवा नामक भील राजा हुआ; एक बार वह सागरसेन नामक मुनिराज को देखकर पहले तो उन्हें मारने के लिये तैयार हो गया, लेकिन बाद में उन्हें वन-देवता समझकर नमस्कार किया और उनके शांत वचनों से प्रभावित होकर मांसादि के त्याग का व्रत ग्रहण किया। व्रत के प्रभाव से वह प्रथम स्वर्ग में देव हुआ और पश्चात् वहाँ से अयोध्या नगरी में भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीची हुआ... चौबीसवें—अंतिम तीर्थंकर का जीव प्रथम तीर्थंकर का पौत्र हुआ। उस भव में अपने दादा के साथ देखा-देखी दीक्षा तो ली, परंतु वीतराग-मुनिमार्ग का पालन नहीं कर सका इसलिये भ्रष्ट होकर उसने मिथ्या मार्ग का प्रवर्तन

किया। मान के उदय से उसे ऐसा विचार हुआ कि—जिसप्रकार भगवान ऋषभदेव दादा ने तीर्थंकर होकर तीन लोक में आश्चर्यकारी सामर्थ्य प्राप्त किया है, उसीप्रकार मैं भी दूसरा मत चलाकर उसका नायक होकर उनकी भाँति इंद्र द्वारा पूजा की प्रतीक्षा करूँगा... मैं भी अपने दादा की भाँति तीर्थंकर होऊँगा। (भावी तीर्थंकर होनेवाले द्रव्य में तीर्थंकरत्व की अभिलाषा जागृत हुई।)

भगवान ऋषभदेव की सभा में एक बार भरत चक्रवर्ती ने पूछा कि—प्रभो! हम सभा में से कोई जीव आपके समान तीर्थंकर होगा? तब भगवान ने कहा कि—हाँ, यह तेरा पुत्र मरीचीकुमार इस भरतक्षेत्र में अंतिम तीर्थंकर (महावीर) होगा। प्रभु की वाणी में अपने तीर्थंकरत्व की बात सुनकर मरीची को महान आत्मगौरव का अनुभव हुआ; तथापि अभी तक वह धर्म को प्राप्त नहीं हुआ था। अरे, तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि सुनकर भी उसने धर्म का ग्रहण नहीं किया। आत्मभान के बिना संसार के कितने ही भवों में वह जीव भटकता फिरा।

वह महावीर का जीव मरीची का अवतार पूरा करके ब्रह्मस्वर्ग का देव हुआ। तत्पश्चात् मनुष्य और देव के कुछ भव किये, उनमें मिथ्यामार्ग का सेवन चलता रहा। अंत में मिथ्यामार्ग के तीव्र सेवन के कुफल से समस्त अधोगतियों में जन्म धारण कर-करके, त्रस-स्थावर पर्यायों में असंख्यात वर्षों तक तीव्र दु:ख भोगे। ऐसा परिभ्रमण कर-करके वह आत्मा खूब थक गया और खेदखिन्न हुआ।

अन्तत: असंख्य भवों में भटक-भटक कर वह जीव राजगृही में एक ब्राह्मण का पुत्र हुआ, वह वेद-वेदांत में परांगत होने पर भी सम्यग्दर्शनरहित था, इसलिये उसका ज्ञान और तप सब व्यर्थ था। मिथ्यात्व के सेवन पूर्वक वहाँ से मरकर वह देव हुआ और फिर राजगृही में विश्वनंदि नामक राजपुत्र हुआ। वहाँ मात्र एक उपवन के लिये संसार का मायाजाल

देखकर वह विरक्त हुआ और संभूतस्वामी के निकट जैन दीक्षा ली; वहाँ निदानसहित मरण करके स्वर्ग में गया और वहाँ भरतक्षेत्र के पोदनपुर नगर में बाहुबलिस्वामी की वंश परम्परा में त्रिपुष्ठ नामक अर्धचक्री (वासुदेव) हुआ। वहाँ से तीव्र आरंभ-परिग्रह के परिणामसहित अतृप्त रूप से मरकर सातवें नरक में गया। अरे, उस नरक के घोर दुःखों की क्या बात!! संसार में भटकते हुए जीव ने अज्ञानवश कौन से दुःख नहीं भोगे होंगे!

महान कष्टपूर्वक असंख्यात वर्षों की वह घोर नरकयातना का काल पूर्ण करके वह जीव गंगा किनारे के सिंहगिरि पर सिंह हुआ... फिर धधकती हुई अग्नि समान पहले नरक में गया और वहाँ से निकलकर जम्बूद्वीप के हिमवन पर्वत पर दैदीप्यमान सिंह हुआ... इसी सिंह पर्याय में महावीर के जीव ने आत्मलाभ प्राप्त किया। किस प्रकार प्राप्त किया? वह प्रसंग देखें—

एक बार वह सिंह क्रूरता से हिरन को फाड़कर खा रहा था कि आकाशमार्ग से गमन करते हुए दो मुनियों ने उसे देखा, और 'यह जीव होनहार अंतिम तीर्थंकर है'—ऐसे विदेह के तीर्थंकर के वचनों का स्मरण करके दयावश आकाशमार्ग से नीचे उतरकर उस सिंह को धर्म का संबोधन किया कि हे भव्य मृगराज! इससे पूर्व त्रिपुष्ठ वासुदेव के भव में तूने अनेक वांछित विषयों का उपभोग किया और नरक के अनेक प्रकार के दुःख भी अशरणरूप से आक्रन्द कर-करके सहन किये... उस काल दसों दिशाओं में तूने शरण के लिये पुकार की परंतु तुझे कहीं शरण नहीं मिली। अरे! अब भी तू क्रूरतापूर्वक पाप का उपार्जन कर रहा है? अपने घोर अज्ञान के कारण अभी तक तूने तत्त्व को नहीं जाना। इसलिये शांत हो... और इन दुष्ट परिणामों को छोड़! मुनिराज के मधुर वचन सुनते ही सिंह को पूर्वभवों का ज्ञान हुआ और अश्रुधारा बहने लगी... परिणाम विशुद्ध हुए... तब मुनिराज

ने देखा कि इस सिंह के परिणाम शांत हुए हैं और वह आतुरता से देख रहा है, इसलिए वह इस समय अवश्य सम्यक्त्व प्राप्त करेगा।

ऐसा विचार करके मुनिराज ने उसके पुरुरवा भील से लेकर अनेक भवों का वर्णन किया और कहा कि हे शार्दूल! अब दसवें भव में तू भरतक्षेत्र का तीर्थंकर होगा—ऐसा हमने विदेहक्षेत्र में श्रीधर तीर्थंकर के मुँह से सुना है। इसलिये हे भव्य! तू मिथ्यामार्ग से निवृत्त होकर आत्महितकारी ऐसे सम्यक्‌मार्ग में प्रवृत्ति कर!

महावीर का जीव (सिंह) मुनिराज के वचनों से तुरंत प्रतिबोध को प्राप्त हुआ; उसने अत्यंत भक्ति से बारंबार मुनियों को प्रदक्षिणा दी और उनके चरणों में नम्रीभूत हो गया... रौद्ररस के बदले तुरंत ही शांत रस प्रगट हुआ और उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया... इतना ही नहीं, उसने निराहार व्रत अंगीकार किया। अहा, सिंह की शूरवीरता सफल हुई! शास्त्रकार कहते हैं कि उस समय वैराग्य से उसने ऐसा घोर पराक्रम प्रगट किया कि यदि तिर्यंचगति में मोक्ष होता तो अवश्य वह मोक्ष को प्राप्त होता! उस सिंह पर्याय में समाधिमरण करके वह सिंहकेतु नाम का देव हुआ।

वहाँ से धातकी खंड के विदेहक्षेत्र में कनकोज्ज्वल नाम का राजपुत्र हुआ... अब धर्म द्वारा वह जीव मोक्ष के निकट पहुँच रहा था। वहाँ वैराग्यसहित संयम ग्रहण करके सातवें स्वर्ग में गया। वहाँ से साकेतपुरी (अयोध्या) में हरिसेन राजा हुआ और फिर संयमी होकर स्वर्ग में गया। वहाँ से धातकीखंड में पूर्व विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती राजा हुआ; वहाँ श्री क्षेमंकर तीर्थंकर के समीप दीक्षा ली और सहस्रार स्वर्ग में सूर्यप्रभदेव हुआ। वहाँ से जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर में नन्दराजा हुआ और दीक्षा लेकर, उत्तम संयम का पालन करके ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त किया, दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारणभावना द्वारा तीर्थंकरनामकर्म का बंध किया और संसार का छेदन किया, उत्तम

आराधनासहित अच्युत स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान में इंद्र हुआ।

वहाँ चयकर महावीर का वह महान आत्मा भरतक्षेत्र में वैशाली के कुंडलपुर के महाराजा सिद्धार्थ के घर में अंतिम तीर्थंकर के रूप में अवतरित हुआ... यहाँ राजा श्री के वहाँ वैभव की वृद्धि होने के कारण वर्धमान नाम दिया गया था। प्रियकारिणी माता के उस वीर—वर्द्धमान पुत्र ने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन इस भरतभूमि को पावन किया। उन वीर वर्द्धमान बाल तीर्थंकर को देखते ही संजय और विजय नाम के मुनियों का संदेह दूर हुआ, इसलिये उन्होंने प्रसन्न होकर 'सन्मतिनाथ' नाम रखा। संगम नामक देव ने भयंकर सर्प का रूप धारण कर उस बालक की निर्भयता एवं वीरता की परीक्षा करके भक्तिपूर्वक 'महावीर' नाम दिया। तीस वर्ष की युवावस्था में तो उन्हें जातिस्मरण हुआ और ब्याह न करके संसार से विरक्त होकर (मगसिर कृष्णा १० के दिन) स्वयं दीक्षित हुए। कूलपाक नगरी के कूल राजा ने उन्हें खीर द्वारा प्रथम आहारदान दिया। उज्जैन नगरी के वन में रुद्र ने उन्हें घोर उपसर्ग किया, परंतु वे महावीर मुनिराज निजध्यान से किंचित् चलायमान नहीं हुए सो नहीं हुए... इसलिए रुद्र ने नम्रीभूत होकर स्तुति की और 'अतिवीर' (महाति महावीर) नाम दिया।

कौशाम्बी नगर में बंधनग्रस्त सती चंदनबाला को उन पाँच नामधारी प्रभु के दर्शन होते ही उसकी बेड़ी के बंधन टूट गये और उसने परमभक्ति सहित प्रभु को आहारदान दिया। साढ़े बारह वर्ष तक मुनिदशा में रहकर वैशाख शुक्ला १०वीं के दिन, सम्मेदशिखरजी तीर्थ से लगभग दस मील दूर जृंभिक ग्राम की ऋजुकूला नदी के किनारे क्षपकश्रेणी लगाकर प्रभु ने केवलज्ञान प्रगट किया। वे अरहंत भगवान राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर पधारे और ६६ दिन के पश्चात् श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से दिव्यध्वनि द्वारा धर्मामृत की वर्षा प्रारम्भ हुई... जिसे झेलकर इन्द्रभूति गौतम आदि अनेक जीवों ने प्रतिबोध प्राप्त किया। महावीर स्वामी की धर्म सभा में ७०० तो

केवली भगवान थे। कुल १४०० मुनिवर और ३६०० अर्जिकाएँ थीं। एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएँ थीं। असंख्य देव और संख्यात तिर्यंच थे। तीस वर्ष तक लाखों-करोड़ों जीवों को बोध देकर वीर प्रभु पावापुरी नगरी में पधारे और वहाँ के उद्यान में योग निरोध करके विराजमान हुए.... कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रात:काल परम सिद्धपद को प्राप्त कर सिद्धालय में जाकर विराजमान हुए... उन सिद्धप्रभु को नमस्कार हो।

अर्हंत सब ही कर्म के कर नाश इस ही रीतिसों,
उपदेश भी उसका ही दे, सिद्धि गये नमूँ उनको।
श्रमणों जिनों तीर्थंकरों सब सेय एक ही मार्ग को,
सिद्धि गये नमूं उन्हींको-निर्वाण के उस मार्ग को।

(प्रवचनसार)

भगवान महावीर ने जब मोक्ष गमन किया, उस समय अमावस्या की अंधेरी रात्रि होने पर भी सर्वत्र एक चमत्कारी दिव्य प्रकाश फैल गया था और तीन लोक के जीवों को भगवान की मुक्ति के आनंदकारी समाचार मिल गये थे। देवेन्द्रों तथा नरेन्द्रों ने भगवान के मोक्ष का महा-महोत्सव किया। अमावस्या की काली रात्रि करोड़ों दीपों के प्रकाश से जगमगा उठी... करोड़ों दीपों की आवलियों से मनाया गया वह निर्वाण-महोत्सव दीपावली-पर्व के रूप में सारे भारत में प्रसिद्ध हुआ और ईसवी सन् के ५२७ वर्ष पूर्व का यह प्रसंग आज भी हम सब आनंदपूर्वक दीपावली-पर्व के रूप में आनंदपूर्वक मना रहे हैं। दीपावली भारत का सर्व मान्य आनंदकारी धार्मिक पर्व है।

—ऐसे इस दीपावली-पर्व के मंगल अवसर पर वीर प्रभु की आत्म साधना का स्मरण करके हम भी उस मार्ग पर विचरें और आत्मा में रत्नत्रय के दीप प्रकाशित करके अपूर्व दीपावली मनायें।

जय महावीर!

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-22, अंक-7

समयसार का जो अभ्यास करेगा उसका मोह नष्ट हो जायेगा।

शुद्धात्मा के मंथन से परिणति की शुद्धता

[कलश टीका-प्रवचन]

पर परिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावात्
अविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्र-
मूर्तेर्भवतुसमयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

आत्मा के परमार्थ स्वरूप को बतलानेवाला यह समयसार शास्त्र, उसकी टीका लिखते हुए आचार्य अमृतचंद्र सूरि कहते हैं कि इस समयसार के उपदेश से, अर्थात् उसमें कहे गये शुद्ध आत्मस्वरूप के मंथन से मेरी परिणति परम विशुद्ध बनो। इतनी शुद्धि तो हुई है, इससे और अधिक उत्कृष्ट शुद्धि बनो। देखो, यह समयसार के टीकाकार की भावना! टीका के समय विकल्प तो है, परंतु भावना विकल्प की तरफ जाती नहीं, भावना तो शुद्धात्मा तरफ ही झुकती है। 'समयसार' को नमस्कार करके अर्थात् शुद्धात्मा की ओर परिणति को झुकाकर मंगल किया है। अब मेरी पर्याय शुद्धात्मा की ओर उग्रता से झुकती रहे। श्रुत की टीका के समय अंतर के भावश्रुत में बारंबार शुद्धात्मा के मंथन से परिणति शुद्ध होती ही जाती है।

यह समयसार जैसा परम आध्यात्म शास्त्र, वह परमार्थ स्वरूप को बतलानेवाला है, और पर की ओर से परम वैराग्य करानेवाला है, ऐसे शास्त्र के मंथन से परिणति शुद्ध किस प्रकार न हो?—अर्थात् जरूर शुद्ध होती ही है। यह शास्त्र समस्त पर तरफ से वैराग्य उत्पन्न कराता है, कहीं भी पराश्रय और राग का पोषण करने में नहीं आया। शुद्धात्मा का परमार्थ स्वरूप बतलाकर स्वाश्रय कराता है, जिससे इसके अभ्यास से भावश्रुत की निर्मलता होती जाती है, वीतरागता की वृद्धि से परिणति शुद्ध बनती जाती है।

स्वभाव से तो मैं शुद्ध चिन्मात्र हूँ—इसप्रकार स्वरूप की दृष्टि सहित आचार्यदेव ने परिणति की पूर्ण शुद्धता की भावना की है। इसप्रकार कथन करके शुद्ध द्रव्य और पर्याय दोनों का ज्ञान करवा दिया। वस्तु से तो मैं शुद्ध चैतन्य मूर्ति, रागादि उपाधिरहित, सुख का पुंज हूँ—ऐसा निज स्वरूप का भान तो है, साधकदशा है, परंतु वर्तमान पर्याय में थोड़ा बहुत अशुद्धता का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है, इस अशुद्धता का नाश होकर शुद्धात्मा के मंथन द्वारा मेरी परम विशुद्धि प्रगट होगी।

अशुद्धता का निमित्त मोहकर्म है, और शुद्धता का कारण शुद्धात्मा की भावना है। अब मेरी परिणति इस समयसार की टीका से, टीका में कहे गये शुद्धात्मा के मंथन से, शुद्धात्मा तरफ झुकती है, और मोहनीय के उदय तरफ परिणति झुकती नहीं, अर्थात् मोह का नाश होकर परिणति शुद्ध होती जाती है और जो कोई श्रोता इस समयसार टीका में कहे हुए भावों का भाव-श्रुत द्वारा मंथन करेगा, उसके भी मोह का नाश हो जायेगा, जिससे सम्यक्त्वादि शुद्ध परिणति प्रगट होगी। 'मेरे और पर के मोह को नाश करने के लिये मैं यह समयसार कहता हूँ' इस प्रकार कहकर आचार्यदेव ने इस शास्त्र का उत्तम फल बतलाया है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप बतलाकर यह शास्त्र मोह को नाश करनेवाला है।

यह आत्मवस्तु ज्ञानस्वरूप और सुखस्वरूप है; पर्याय में से अशुद्धता का नाश होते ही उस ज्ञान को सुख प्रगट होता है। अपने स्वभाव में था, वही पर्याय में प्रगट होता है।

प्रश्न—जीव का स्वभाव तो शुद्ध है; पर्याय में अनादि से इसको जो अशुद्धता है, वह अशुद्धता में किसी प्रकार निमित्तमात्र है कि नहीं? स्वाधीन वस्तु स्वयं विकाररूप परिणमित हुई, उसमें कोई निमित्त है कि नहीं?

उत्तर—हाँ, निमित्तमात्र भी है–निमित्त कौन है? तो कहते हैं कि मोहकर्म के उदय का विपाक अशुद्धता का निमित्त है। जीव के अशुद्धभावों

.... शेष पृष्ठ 24 पर

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

द्रव्य और गुण-पर्यायों की भेद-विवक्षा

आत्मा व्यवहारनय से दर्शन, ज्ञान चारित्र इन तीन गुणरूप है। वह व्यवहारनय निश्चय की अपेक्षा से अभूतार्थ है। निश्चय से आत्मा एक चैतन्यरस सम्पन्न, अभेद, नित्य और निर्विकार है। उसमें ये दर्शन, ज्ञान, चारित्र के तीन भेद करना, वह यथार्थ नहीं है; अभूतार्थ और असत्यार्थ है। जीव की पर्याय में तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र हैं; परन्तु उनके भेद पाड़ना, वह व्यवहार है। व्यवहाररत्नत्रय तो वास्तव में अपनी पर्याय में नहीं, अत: वह तो असद्भूत है।

यह मार्ग कठिन तो है, पर इसको पाना अशक्य नहीं है। मार्ग की दिशा की खबर नहीं इसलिए कठिन लगता है; परन्तु विपरीत दशा में दौड़ने लगे या रेत की चमक में जल शोधने लगे तो मिले वैसा नहीं है। रेत की चमक में पानी नहीं होता। भाई! वहाँ कहाँ दौड़ रहा है! भजन में गाते हैं न- मनना ते मृगला ने पाछा बालजो रे लाल... दौड़ हाँफे झाँझवा जल नी काज...झाझवा माने चमक में पीने का पानी नहीं होता भाई! नहीं होता! खारी जमीन में सूर्य की किरणें पड़ें तो पानी जैसा लगता है। उस दिशा में बहुत दौड़े, परन्तु पानी तो दूर, ठण्डी हवा भी नहीं मिलती; वैसे ही दौड़-दौड़कर पुण्य-पाप की क्रिया करे परन्तु उसमें से शान्ति नहीं मिलती, क्योंकि उसमें शान्ति है ही नहीं। शान्ति तो पुण्य-पाप के विकल्प रहित भगवान आत्मा में है। वहाँ तो जाता नहीं और बाहर दौड़ता है।

दौड़त-दौड़त दोड़ियो जेती मन नी दौड़।
प्रेम प्रतीत विचारो ठुकड़ी, गुरुगम ले जो जोड़।

भगवान के ऊपर प्रेम चाहिए। विकार के प्रेम से आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। अनादि से पर के और राग के प्रेम में बहुत दौड़ा है, परन्तु शान्ति हाथ नहीं आई। अरे! त्रिकाली की अपेक्षा दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी भेद हैं,

अत: उनके आश्रय से धर्म नहीं होता।

'निहचै दृष्टि एक रस चेतन, मोहरहित अविचल अविकार' भगवान आत्मा में भेद नहीं है, आत्मा अविचल और अविकार है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद तो पर्याय में हैं, द्रव्य में तो वह सब अभेद है अत: भेद वह व्यवहार है। आत्मा निश्चय और निमित्त व्यवहार- ऐसा नहीं, आत्मा निश्चय और राग व्यवहार- ऐसा नहीं; परन्तु अभेद आत्मा निश्चय और निर्मल पर्याय के भेद, वह व्यवहार ऐसा कहा है। थोड़ा भी सत्य जैसा है, वैसा जानना पड़ेगा। गुरु समझाते हैं; परन्तु समझना तो स्वयं को पड़ेगा।

'सम्यक दसा प्रमान उभै नय निर्मल समल एक ही बार' अभेद, वह निश्चय और पर्याय का भेद पड़े वह व्यवहार। इन दोनों को एकसाथ जानना, वह प्रमाण है। उसमें लीनता, वह प्रमाण है। अखण्ड वस्तु की दृष्टि करके उसमें लीनता, वह धर्म है; परन्तु वस्तु में ऐसा भेद भी नहीं है; वह तो एकाकार अभेद है। निश्चय का आश्रय हो, व्यवहार का ज्ञान हो और द्रव्य-पर्याय दोनों का एकसाथ ज्ञान होना वह प्रमाण ज्ञान है।

47 शक्तियों में भी दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति आदि शक्तियाँ ली हैं। पर्याय में उनका परिणमन होना, वह व्यवहार है। राग, वह व्यवहार नहीं, राग तो असद्भूत व्यवहार में जाता है।

निर्मल अर्थात् अभेदवस्तु और समल अर्थात् भेद। इन दोनों का एक साथ ज्ञान होना, वह प्रमाणज्ञान है। 'यों समकाल जीव की परिणति' त्रिकाल पारिणामिकभाव वह निर्मल और वर्तमान निर्मल पर्याय वह समल परिणति; इन दोनों को परिणति कहकर समझाया है। शब्द पकड़ने से काम नहीं चलता।

'कहै जिनेन्द्र गहै गणधार' - निर्मल और समल ऐसी जीव की दोनों परिणति को जो एकसमय में जानता है, वह प्रमाणज्ञान है। भगवान तीर्थंकर देव ने एक ही समय में जीव की ऐसी दो परिणति कही है और उसको गणधरदेव धारण करते हैं - झेलते हैं।

अब 17 वें कलश के पद्यरूप 18 वें काव्य में व्यवहारनय से जीव का स्वरूप बतलाते हैं–

व्यवहारनय से जीव का स्वरूप

एकरूप आतम दरब, ग्यान चरन दृग तीन।
भेदभाव परिनामसौं, विवहारै सु मलीन।।18।।

अर्थः– आत्मद्रव्य एकरूप है, उसको दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन भेदरूप कहना सो व्यवहारनय है– असत्यार्थ है।।18।।

काव्य – 18 पर प्रवचन

आत्मद्रव्य एकरूप है, आत्मवस्तु अनन्त गुणों का एक रसपिण्ड है। उसको दर्शन, ज्ञान, चारित्र के तीन भेदरूप कहना; वह व्यवहार है, असत्यार्थ है।

जेते भेद विकल्प हैं, ते ते सब विवहार।
निराबाध निरकल्प सो, निश्चयनय निरधार।।

पर्याय स्वयं अंश होने से व्यवहार है उसमें, तथा पर्याय के भेद डालना, वह तो सब व्यवहार है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र– ऐसा तीन प्रकार का व्यवहार कहा है। निर्विकल्प भगवान पूर्णानन्द प्रभू तो निराबाध– निरभेद है, वह निश्चय है– ऐसा नक्की करते हैं। भेद करके समझाना, वह व्यवहार है। यहाँ राग या निमित्तरूप व्यवहार की बात नहीं है, मात्र अभेद, वह निश्चय और उसमें भेद करना, वह व्यवहार ऐसा दोनों का यथार्थ ज्ञान करना, वह प्रमाणज्ञान है।

अब 19 वें काव्य में निश्चयनय से जीव का स्वरूप बतलाते हैं–

निश्चयनय से जीव का स्वरूप

जदपि समल विवहारसौं, पर्यय-सकति अनेक।
तदपि नियत-नय देखिये, सुद्ध निरंजन एक।।

अर्थः– यद्यपि व्यवहारनय की अपेक्षा आत्मा अनेक गुण और पर्यायवान है तो भी निश्चयनय से देखा जाये तो एक, शुद्ध, निरंजन ही है।।19।।

काव्य – 19 पर प्रवचन

इस पद्य में निश्चयनय से जीव का स्वरूप बतलाया है। यद्यपि व्यवहारनय की अपेक्षा से आत्मा अनेक गुण और पर्यायोंवाला है, तथापि निश्चयनय से देखा जाये तो आत्मा एक, शुद्ध निरंजन ही है।

यहाँ 'यद्यपि' कहकर व्यवहार का गौणपना और मंदपना बतलाया है। यद्यपि आत्मा को दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि अनेक गुणों और पर्यायों से देखें तो भेदरूप व्यवहार है– ऐसा दिखता है; तथापि निश्चयनय से देखें तो आत्मा का स्वभाव तो एकरूप अभेद है। वह तो सर्व भावांतरों के नाश करने के स्वभाववाला है।

यहाँ संयोग अथवा विकल्प से आत्मा को देखने की तो बात ही नहीं है, मात्र भेद से देखें तो भेद दिखता है। अनेकपना है ऐसा दिखता है; फिर भी एकरूप अन्तर स्वभाव की दृष्टि से देखें तो आत्मा भेदरहित एकरूप शुद्धवस्तु है, भेद और व्यवहार तो अंजन है, आत्मा तो उससे रहित निरंजन है।

मार्ग ऐसा है भाई! सम्प्रदाय के साथ कहीं मेल खाये– ऐसा मार्ग नहीं है। जहाँ वस्तु स्थिति की ही खबर नहीं ऐसे सम्प्रदाय के साथ मेल कैसे बैठे? किसी को वस्तु का परिचय ही नहीं।

वस्तु में भेद करना, वह अंजन है, मेल है, मेचक है। यहाँ राग-द्वेष के मेल की बात नहीं है। वस्तु में भेद पाड़ना, वह मेल है– यह बात है। आत्मवस्तु मेलरहित है ऐसा नास्ति से कहा जाता है और अस्ति से कहो तो आत्मा 'एक' है। वही सम्यग्दर्शन का विषय है। जहाँ अभेद का लक्ष्य होता है, वहाँ भेद का लक्ष्य छूट जाता है; इसलिए अभेद को व्यवहार के नाश करने के स्वभाववाला कहते हैं।

सर्वभावांतरच्छिदे अर्थात् जो अपने एकरूप स्वभाव से भिन्न है– ऐसा व्यवहार, पर्याय, भेद आदि का आत्मा ध्वंस करनेवाला है। आत्मा तो अमेचक है।

ज्ञान का एक अंश व्यवहार को देखता है और एक अंश निश्चय को

देखता है। यद्यपि व्यवहार से देखनेवाले अंश में आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनरूप दिखता है **'तदापि नियत नय देखिये'** तो आत्मा एकरूप नित्य अभेद अविनाशी है। नियतनय देखिये अर्थात् निश्चयनय को अपना देखे– ऐसा नहीं; अपितु निश्चयनय से वस्तु को देखे तो वस्तु ध्रुव है। यहाँ ध्रुव को ही निश्चयनय कह दिया है। अध्यात्म में नय और नय के विषय का भेद नहीं रहता।

जिसको जन्म–मरण का नाश करना हो अपनी दृष्टि में स्वभाव की सिद्धि करनी हो उसे यह सब जानना पड़ेगा। यह जाने बिना अन्य कोई उपाय नहीं है।

निश्चयनय से देखिये तो आत्मा एक, शुद्ध, निरंजन ही है। 'एक एव एकतः', वस्तुदृष्टि से वस्तु एक ही है, उसमें भेद दिखता नहीं; अभेददृष्टि में भेद नहीं दिखता नहीं। अभेद में भेद दिखे तो अभेद नहीं रहता।

बहुत बारीक बात है भाई! भगवान भगवान..राम..राम..राम नाम की माला जपने से यह कार्य हो जाये, वैसा नहीं है। अन्तर में रमता राम एकरूप है, उसकी दृष्टि करे तो आत्म साक्षात्कार हो। आत्मा..आत्मा का नाम रटने से कुछ नहीं होता, वह तो विकल्प है।

अब 19 वें कलश का पद्य 20 वाँ काव्य कहते हैं, उसमें शुद्ध निश्चयनय से जीव का स्वरूप बतलाया है।

शुद्ध निश्चयनय से जीव का स्वरूप

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और।।20।।

अर्थ:– आत्मा को एकरूप श्रद्धान करना वा एकरूप ही जानना चाहिए, तथा एक में विश्राम लेना चाहिये, निर्मल समल का विकल्प न करना चाहिये। इसी में सर्वसिद्धि है, दूसरा उपाय नहीं है।

भावार्थ:– आत्मा को निर्मल समल के विकल्प रहित एकरूप श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, एकरूप जानना सम्यक्ज्ञान है और एकरूप में ही स्थिर होना सम्यक्चारित्र है, यही मोक्ष का उपाय है ।।20।।

काव्य - 20 पर प्रवचन

एकरूप आत्मा विकल्प से नहीं जाना जा सकता, अत: यह आत्मा एक है- ऐसा नहीं, परन्तु अनेक-भेद पर से लक्ष्य छूटकर अन्तर्मुख हो अर्थात् वस्तु एकरूप ही दृष्टि में आती है 'यह एक है' और इसको मैं पकड़ता हूँ ऐसा नहीं। ऐसा हो, तब तो वस्तु एक और उसको पकड़नेवाली पर्याय इन दो का भेद पड़ जाये।

वीतराग का मार्ग ही मार्ग है, अन्य सब तो थोथा है। 'एक देखिये'- ऐसा कहा माने समस्त आत्माओं को एक मानना- ऐसा नहीं कहा। आत्मा स्वयं एकरूप है ऐसा देखो। जिसमें अनन्त शक्ति और अनन्त सामर्थ्य है- ऐसा भेदरूपभाव होने पर भी उसको अभेद देखो, एकरूप श्रद्धान करो, भेद पर लक्ष्य मत रखो। **'एक देखिये जानिये रमि रहिये इक ठौर'** इसमें दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों आ गये। ध्रुव की श्रद्धा, ध्रुव का ज्ञान और ध्रुव में रमना; वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है।

अहो! पर तरफ लक्ष्यवाले अणुव्रत, महाव्रतादि का राग तो स्थूल राग है; परन्तु निज एकरूप ध्रुववस्तु को ज्ञान, दर्शनादि के तीन प्रकार से देखना, वह भी विकल्प का कारण है- राग है। जबतक उसके ऊपर लक्ष्य है, तबतक दृष्टि में सम्यक्ता नहीं आती। अत: यह वस्तु एक है और अनेक है, मेचक है और अमेचक है- ऐसे विकल्प नहीं रखना।

वीतराग कहते हैं कि तू मेरे सामने देखना छोड़कर तू तेरे सामने देख। तू स्वयं भगवान है। तू ऐसा मत मान कि इतनी बड़ी बात मुझे कैसे बैठे! अनन्तजीव यह बात बैठाकर (स्वीकृत कर-अनुभव कर) मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।

आत्मा एकरूप है, उसको गुण-पर्याय के भेद से अनेकरूप देखो तो अनेकरूप है -ऐसा देखना, वह भेद है, व्यवहार है, मेचकपना है; क्योंकि उसे देखने पर विकल्प उठते हैं और यदि उसमें लाभ माने तो मिथ्यात्व होता है। अत: मैं मेचक हूँ या अमेचक हूँ, वह कोई विकल्प करने योग्य नहीं।

'अलम' बस होओ! विकल्पों से बस होओ!!

समयसार की 142वीं गाथा में आता है कि आत्मा अमेचक है अर्थात् शुद्ध है और पर्याय से मेचक है अर्थात् भेदरूप है; परन्तु उससे क्या है? ऐसे विकल्प करने से क्या हित है? कर्त्ता होकर ऐसे विकल्प करे, वह तो अज्ञान है। विकल्प करना, वह अज्ञानी का कार्य है; क्योंकि उसकी दृष्टि राग और भेद पर है, इससे विकल्प कर्त्ता है और विकल्प ही उसका कार्य है। ज्ञानी तो विकल्प का लक्ष्य छोड़कर एकरूप स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान में रमता है, वह उसकी मुक्ति का कारण है, वही मुक्ति का उपाय है, उसमें ही सर्वसिद्धि है; क्योंकि उससे ही श्रद्धा से लेकर केवलज्ञान आदि सब होता है।

एक भाई कहते हैं कि ऐसी श्रद्धा-ज्ञान न हो, वहाँ तक हमें क्या करना? वहाँ तक उसका प्रयत्न करना, समझ करनी... परन्तु मूलतः तो उसकी दृष्टि में से 'करना' छूटता नहीं है। कुछ करेंगे तो कल्याण होगा ऐसा मान रखा है न! परन्तु भाई! 'करना' वह तो 'मरना' है। विकल्प करना, वह भावमरण है। अकर्त्ता होकर आत्मा में रहना, वह जीव का जीवन है।

आत्मा को देखना और श्रद्धना, वह उसका जीवन है। चश्मा से देखना तो छोड़.. आँख से देखना तो छोड़..परन्तु एकसमय की पर्याय से भी पर को देखना छोड़..अन्तर में भगवान आत्मा विराजता है उसे देख! उसमें दृष्टि स्थाप! वह श्रद्धा ही सच्ची है।

'यहै सिद्धि नहिं और'- अन्तर्मुख चैतन्य के ध्रुवपने की दृष्टि और उसका अनुभव करने में ही सर्व-सिद्धि है, कारण कि उससे ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और केवलज्ञान की सिद्धि होती है।

पण्डित कैलाशचन्दजी (वाराणसी) लिखते हैं कि कानजीस्वामी ने जो काम किया है, वह किसी ने नहीं किया। भाई! हमने तो कुछ नहीं किया। काम करनेवाले तो हम नहीं, परन्तु उसका विकल्प करनेवाले भी हम नहीं है। यह प्रभावना का कार्य हुआ उसमें निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराने के लिए ऐसा कहा जाता है।

अभेद का आश्रय करने से ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और मुक्ति होती है। अन्य कोई उपाय है ही नहीं। भेद और विकल्प से आत्मा को कुछ लाभ नहीं होता।

भावार्थ :– आत्मा को निर्मल, समल के विकल्परहित एकरूप श्रद्धना, वह सम्यग्दर्शन है। नवतत्त्व को जानने से सम्यग्दर्शन है ऐसा कहते हैं, परन्तु नवतत्त्व जैसे हैं, वैसे जाने; उसकी दृष्टि तो आत्मा पर ही जाती है। भेद से नवतत्त्वों की श्रद्धा करे, उसमें नया कुछ नहीं; वह तो अनादि से करता आया है। कलश टीका में कहा है कि 'नवतत्त्व का अनुभव, वह मिथ्यात्व है।'

तो प्रश्न होता है कि मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा कहा है कि 'नवतत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन है।' वहाँ ऐसा कहना है कि एकरूप आत्मा को जानते, अन्य तत्त्व आत्मा में नहीं है, ऐसा ज्ञान होता है उसमें नौ ही तत्त्वों का ज्ञान आ जाता है। इसकारण ज्ञान प्रधान कथन में उसे नवतत्त्व की श्रद्धा कही जाती है। एकरूप आत्मा की अस्ति का ज्ञान होने पर उसमें अजीव और आस्रवादि की पर्याय नहीं है– ऐसी नास्ति का ज्ञान भी साथ आ जाता है।

अपना जो पूर्वाग्रह बन गया हो उसे छोड़कर यह समझना बहुत कठिन है। पक्ष की गंध छोड़ना कठिन है। जैसे केरोसीन की बोतल को कितना ही साफ करो, परन्तु केरोसीन की गंध जाना मुश्किल है, अन्ततः तेजाब डालकर धोने पर गंध जाती है। वैसे ही सम्प्रदाय की दृष्टि हो, उसे छोड़कर यह दृष्टि करना कठिन काम है। पहले तो यह दृष्टि मिथ्या और यह दृष्टि सच्ची है –ऐसे भेद पड़े, तब दृष्टि फिरती है।

अहा! शास्त्र का ज्ञान वह कोई ज्ञान नहीं है। एकरूप अभेद आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान है और एकरूप आत्मा में स्थिर होना, वह चारित्र है; पंच महाव्रत के विकल्प उठते हैं, वह चारित्र नहीं, वह तो विकार है, दुःख है, दोष है, जहर है। अभेद आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और उसमें स्थिरता ही एक मोक्ष का उपाय है।

अब अमृतचन्द्राचार्य 20 वाँ श्लोक कहते हैं–

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया:
अपतित मिदमात्म ज्योतिरूद्गच्छम्।
सततमनुभवामोऽनन्त चैतन्य चिह्नम्
न खलु न खलु यस्मदन्यथा साध्यसिद्धि।।20।।

शुद्ध आनन्द स्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव वह मोक्षमार्ग है। यहाँ उस अनुभव की प्रशंसा करते है। ज्ञान कैसा है? कि अनन्त है। अनन्त अर्थात् जिसकी कोई मर्यादा नहीं ऐसा एकरूप ज्ञान।

शुद्ध अनुभव की प्रशंसा

जाकै पद सोहत सुलच्छन अनंत ग्यान
विमल विकासवंत ज्योति लहलही है।
यद्यपि त्रिविधरूप विवहारमैं तथापि
एकता न तजै यौं नियत अंग कही है ।।
सो है जीव कैसीहूं जुगतिकै सदीव ताके,
ध्यान करिबैकौं मेरी मनसा उनही है।
जाते अविचल रिद्धि होत और भांति सिद्धि,
नाहीं नाहीं नाहीं यामैं धोखो नाहीं सही है।।21।।

अर्थ:- आत्मा अनंत ज्ञानरूप लक्षण से लक्षित है, उसके ज्ञान की निर्मल प्रकाशवान ज्योति जग रही है, यद्यपि वह व्यवहारनय से तीनरूप है तो भी निश्चयनय से एक ही रूप है, उसका किसी भी युक्ति से सदा ध्यान करने को मेरा चित्त उत्साहित हुआ है, इसी से मोक्ष प्राप्त होती है और कोई दूसरा तरीका कार्य सिद्ध होने का नहीं है! नहीं है!! नहीं है !!! इसमें कोई सन्देह नहीं है बिलकुल सच है ।।21।।

काव्य - 21 पर प्रवचन

'जाके पद'- जिसका पद ज्ञानरूप सुलक्षण से शोभता है। जिसमें स्वभाव और स्वभाववान- ऐसे भेद भी नहीं हैं, ऐसी वस्तु शोभती है। चैतन्य सूर्य जगमग-जगमग हो रहा है। अकेला चैतन्यप्रकाश लहलहा रहा है।

'चैतन्य प्रकाश' यह भी भेद से कथन है। अरे! जहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भेद भी नहीं पोसाता, वहाँ राग और निमित्त हो तो ज्ञान हो, यह कहाँ से पोसावे?

वस्तु में गुण और पर्याय तो है, फिर भी उसके भेद भी जिसको खटकते हैं, वस्तु ऐसी अभेद और एकाकार है, इससे निश्चयनय कहता है कि आत्मा कभी भी तीनरूप नहीं हुआ। जो एकरूप है, वह जीव है। भेदरूप को जीव नहीं कहना ऐसा कहते हैं।

यह तो जीवद्वार है न! जीवद्वार माने जीव के स्वरूप का कथन। जीव किसको कहना? कि जो एकरूपता को नहीं तजता, वह जीव है। जहाँ एक ऊपर नजर पड़ी, वहाँ एक वस्तु और नजर का भेद भी नहीं है। यह एकता कभी भेदरूप में नहीं आती। एकरूप आत्मा कभी व्यवहाररूप या भेदरूप या अनेकरूप हुआ ही नहीं और होता भी नहीं।

लोग बाहर की विद्वत्ता से आत्मा को अनेक प्रकार मानते हैं; परन्तु बाहर की विद्वत्ता से आत्मा समझ में आवे वैसा नहीं है। भाई! आत्मा ने कभी एकरूपता छोड़ी नहीं, वहाँ वह पुद्गल की सहायता ले, विकल्प की सहायता लेकर काम करे या विकल्प की सहायता से जाने- ऐसा कैसे बने? ऐसा बनना अशक्य है।

अहा! आत्मवस्तु एकरूपता छोड़कर दो रूप हुई नहीं। गुणी और गुण- ऐसे दो भेदरूप भी आत्मा नहीं हुआ। उसका किसी भी युक्ति से ध्यान करने के लिए मेरा चित्त उत्साही बना है। युक्ति माने अन्तर्मुख पुरुषार्थ करने के लिए मैं जागृत हुआ हूँ, मेरा झुकाव निरन्तर आत्मा की तरफ जाने के लिए तैयार हो गया है।

धर्मी की दृष्टि निरंतर एकरूप द्रव्य के ऊपर ही होती है। ऐसा धर्मी कहता है कि मेरा मन आत्मा का ध्यान करने के लिए उत्साही हुआ है। वस्तु तरफ की एकाग्रता अर्थात् ध्यान, वही वस्तु का प्रयत्न और प्रतीति है, वह निरंतर चलता है। उसको कभी भी भेद की मुख्यता नहीं हो जाती। सदैव निश्चय ही मुख्य होता है। व्यवहार किसी समय मुख्य नहीं होता। मैं आत्मा

के निश्चय एकरूप स्वरूप का ध्यान करने को उत्साहित हुआ हूँ। **"ध्यान करिवैं को मेरी मनसा उनही है।"**

जो भेद और व्यवहार को जीते और अभेद की दृष्टि करे, वह जैन है; क्योंकि जीव सदा ही अभेद है, जीव ने कभी भी अभेदपना नहीं छोड़ा है।

'जाते अविचल रिद्धि होत' अविचल रिद्धि माने मोक्ष। अभेद के अनुभव से मोक्ष प्राप्त होता है। **'और भाँति सिद्धि नाहीं नाहीं'**– अन्य किसी उपाय से मोक्ष–पूर्णदशा की सिद्धि नहीं होती। स्व की एकता के उत्साह से अविचल रिद्धि प्राप्त होती है। व्यवहार या भेद के लक्ष्य से सिद्धि नहीं। नहीं..नहीं..नहीं ऐसे बारंबार नहीं कहकर कथन का समर्थन किया है।

आत्मा की श्रद्धा, आत्मा का ज्ञान और आत्मा में स्थिरता– इससे ही पूर्णता की प्राप्ति है। एक के आश्रय सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं...नहीं..नहीं। इसमें धोखा अर्थात् कोई शंका नहीं है। यह बात तो एकदम सत्य है। एक आत्मा के आश्रय से ही श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र है। *क्रमशः*

पृष्ठ 13 को शेष....

से पूर्व में बँधा हुआ जो मोहकर्म, उस उदयकाल के समय अशुद्धता का निमित्त है परंतु यहाँ तो कहते हैं कि शुद्धात्मस्वभाव के मंथन के कारण शुद्धता बढ़ने पर वह मोह अशुद्धता का निमित्त हुए बिना ही नष्ट हो जाता है। समयसार की टीका करते–करते भावश्रुत में शुद्धात्मा का ऐसा जोरदार मंथन चलता है कि परिणति शुद्ध हो जाएगी और मोह की मलिनता उसमें से निकल जायेगी। परिणति का शुद्ध स्वरूप में ही व्याप्य–व्यापकपना हो जायेगा अर्थात् अशुद्धता के साथ का व्याप्य–व्यापकपना मिट जायेगा। शास्त्र का ऐसा फल है। अर्थात् ऐसा भाव जो प्रगट करे, वही इस शास्त्र को समझा कहा जाता है। अहो, आत्मा को निहाल कर दे, ऐसे भाव संतों ने इस शास्त्र में भरे हैं; यह तो भागवत शास्त्र है, भगवान आत्मा का भागवत है।

चलो मङ्गलायतन रहो मङ्गलायतन बनो मङ्गलायतन

श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई के
तत्त्वावधान में समयसार : कहान शताब्दी महोत्सव तथा
श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं
कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन
के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं
समयसार विधान व निर्वाण महोत्सव

(रविवार, दिनांक 31 अक्टूबर से गुरुवार, दिनांक 04 नवम्बर 2021)

मङ्गल-आमंत्रण

सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आपको जानकर हर्ष होगा, वीर जिनेन्द्र के शासन में, कुन्दकुन्दादि दिगम्बर आचार्यों की अनुकम्पा से और पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, तद्भक्त प्रशममूर्ति बहिनश्री चम्पाबेन के प्रभावना योग से तीर्थधाम मङ्गलायतन आप सभी के सहयोग से जिनशासन की आराधना-प्रभावना का महत् कार्य कर रहा है।

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी शासन नायक भगवान श्री महावीरस्वामी के निर्वाण कल्याणक प्रसंग पर तीर्थधाम मङ्गलायतन के सुरम्य वातावरण में **पंच दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण शिविर** का आयोजन **रविवार, दिनांक 31 अक्टूबर से गुरुवार, दिनांक 04 नवम्बर 2021** तक किया जा रहा है।

इस शिविर में पूज्य गुरुदेवश्री के भवतापहारी सी.डी. प्रवचन, उन्हीं के मार्ग की प्रभावना करनेवाले विद्वानों के स्वाध्याय, पूजन-विधान एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जायेंगे। प्रतिदिन प्रात: से रात्रि तक विभिन्न विद्वानों के माध्यम से तत्त्वज्ञान श्रवण का अपूर्व लाभ प्राप्त होगा।

इस अवसर पर **श्री समयसार विधान** के साथ **भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव विधानाचार्य पण्डित सुनील धवल, दीपक धवल, भोपाल** के सुमधुर स्वर के साथ मनाया जायेगा। सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

ऐसे दुर्लभ अवसर पर लाभ प्राप्त करने हेतु आप सभी को हमारा भावभीना आमन्त्रण है। कृपया अवश्य पधारकर तत्त्वज्ञान का लाभ अर्जित कीजिए।

जैनं जयतु शासनम्।

मुख्य आकर्षण

❀ श्री समयसार विधान ❀ पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन ❀ विद्वानों द्वारा विशिष्ट स्वाध्याय ❀ धवलाजी वाचना ❀ षट्खण्डागम ग्रंथ (धवलाजी) विराजमान ❀ निर्वाण महोत्सव ❀ सांस्कृतिक प्रस्तुति-उज्जैन एवं मङ्गलार्थियों द्वारा ❀ साधर्मी मिलन ❀ मङ्गलायतन दर्शन

विधान आयोजनकर्ता-धवलाजी विराजमानकर्ता :
श्री कमल जैन, मधु जैन बोहरा परिवार, कोटा; श्रीमती लाडकंवरजी, पत्नी स्व. श्री गम्भीरमलजी, मनीषजी धनोप्या परिवार, कोटा; श्रीमती मोहिनी देवी पत्नी स्व. श्री नेमिचन्दजी, विकासजी कोटिया परिवार, कोटा

शिविर उद्घाटनकर्ता :
श्री विजय बड़जात्या, इन्दौर
श्री पद्मजी पहाड़िया, इन्दौर

ध्वजारोहणकर्ता - मंगल कलश :
श्री जैनबहादुरजी जैन परिवार, कानपुर; श्रीमती ज्योति जैन धर्मपत्नी श्री अनिल जैन, उज्जैन; श्री जयेन्द्र प्रीति कोठारी, अहमदाबाद

आलोकित ज्ञानदीप
पण्डित विमलदादा झांझरी
पण्डित राजेन्द्र जैन
पण्डित प्रदीप झांझरी
पण्डित जे.पी. दोशी
डॉ. योगेश जैन
पण्डित अजित जैन
पण्डित अरहन्त झांझरी
पण्डित नगेश जैन
बा.ब. कल्पनाबेन
सोनगढ़ एवं उज्जैन की ब्रह्मचारिणी बहिनें
पण्डित अशोक लुहाड़िया
पण्डित सचिन जैन
पण्डित सुधीर शास्त्री
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री
पण्डित अमित अरहन्त शास्त्री

- निवेदक -

अजितप्रसाद जैन, अध्यक्ष / स्वप्निल जैन, महासचिव
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रदीप झांझरी, अध्यक्ष / नागेश जैन, महासचिव
श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

सम्पर्कसूत्र एवं कार्यक्रम स्थल
सुधीर जैन शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन, डीपीएस सीनियर विंग के पास, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी, हाथरस (उ०प्र०)
Mob. : 9997996346, 9756633800, 7581060200 www.mangalayatan.com info@mangalayatan.com

नोट :- कृपया पत्रिका को मन्दिरजी में लगवा देवें।

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

इसी परम्परा में 9 वीं सदी के आचार्य जिनसेन हुए, जिन्होंने हरिवंशपुराण नामक ग्रंथ की रचना की। इसके पश्चात् आचार्य वीरसेन के शिष्य एक अन्य आचार्य जिनसेन हुए; जो विशाल बुद्धि के धारक, कवि, विद्वान और साहित्यकार थे। जिनसेन के शिष्य आचार्य गुणभद्र ने अपने गुरु के लिए लिखा है कि 'जैसे हिमालय से गंगा का उदय और उदयाचल से सूर्य का उदय होता है, वैसे ही वीरसेन से जिनसेन का उदय हुआ।

'आदिपुराण' का अंतिम भाग एवं उत्तरपुराण की रचना करके उन्होंने पुराण जगत में एक अभूतपूर्व कार्य किया। यह कार्य जैन जगत के भविष्य के लिए वरदान सिद्ध हुआ। जिनसेनाचार्य ने महापुराण लिखने का संकल्प किया, किंतु वे उसे पूरा नहीं कर पाए। महापुराण में 24 तीर्थंकरों के जीवन का समग्र चित्रण मिलता है।

इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने महापुराण के लेखन को पूरा किया। आचार्य जिनसेन के मुख्य गुरु वीरसेन थे, जिन्होंने षट्खंडागम सूत्र के प्रथम स्कंध की चार विभक्तियों पर धवला नाम की 20 हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखने का श्रेय प्राप्त किया। इसके पश्चात् आचार्य जिनसेन ने उसे पूरा किया।

तीनों ही गुरु-शिष्यों अर्थात् आचार्य वीरसेन, आचार्य जिनसेन एवं आचार्य गुणभद्र ने जितने अधिक साहित्य का सृजन किया, वह अपने आप में अनूठा है।

इस प्रकार इन आचार्यों की परम्परा ने श्रुतज्ञान को अपने पारलौकिक ज्ञान से आगे फैलाया। इन आचार्यों के पश्चात् ईसा की 14वीं शताब्दी तक महावीर की निर्ग्रंथ परम्परा में अनेक आचार्य एवं मुनिगण होते रहे, जिन्होंने अपनी साधना एवं ज्ञानशक्ति के माध्यम से भारतवर्ष में जैन श्रुतज्ञान को प्रचारित किया।

इस प्रकार महान आचार्यों एवं मनीषियों ने जैन श्रुत को दीर्घ काल तक

जीवंत रखा। इन्हीं के कारण आज जैनधर्म, जैनदर्शन और जैन संस्कृति भारतीय दर्शन संस्कृति में ही नहीं, अपितु विश्व संस्कृति में भी सुयोग्य उच्च स्थान पर है।

श्रुत के भेद

जैन परम्परा का स्वाध्याय शब्द अपने आप में अत्यन्त गूढ़ रहस्य छिपाए हुए है। स्वाध्याय शब्द स्पष्ट रूप से स्व के अध्याय अर्थात् स्व के अध्ययन करने को इंगित करता है। इस तरह से स्व का अध्ययन करना ही वास्तविक स्वाध्याय होने के कारण इसको परम तप का दर्जा मिला है। स्व के अध्ययन करने का एकमात्र अभिप्राय स्व की यथार्थ जानकारी करना, स्व का अनुभव करना ही है। स्व का सही अनुमान ज्ञान होने पर ही स्व का सही अनुभव हो सकता है। स्व के अनुभव को ही जिनागम में परम तप कहा है।

स्वाध्याय के बारे में पण्डित सदासुखदासजी कहते हैं कि श्रुत के अर्थ का प्रकाश करना, व्याख्यान करना, स्वयं निरन्तर अभ्यास करना तथा दूसरों को अभ्यास कराना स्वाध्याय तप है।

अब यहाँ प्रसंग प्राप्त श्रुतज्ञान का वर्णन करते हैं—

मतिज्ञान पूर्वक होनेवाले अर्थ के ज्ञान से अर्थान्तर के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। श्रुत को बतलाते हुए आचार्य पूज्यपाद कहते हैं—

श्रूयते अनेन तत् शृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम्।

अर्थात् पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनता है या सुनना मात्र, श्रुत कहलाता है। **सर्वार्थसिद्धि, अध्याय 1, सूत्र 9, पृष्ठ 66**

अब आगे कहते हैं कि—

श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्

अर्थात् श्रुतज्ञान का विषयभूत पदार्थ श्रुत है।

सर्वार्थसिद्धि, अध्याय 2, सूत्र 21, पृष्ठ 128

क्रमशः साभार : स्वाध्याय का स्वरूप

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री अभिनव धर्मभूषण यति

धर्मभूषण नामक कई भट्टारक, विद्वान आदि हुए हैं। उन सबसे भिन्न धर्मभूषणजी मुनि थे। आपने अपने को अन्य धर्मभूषणजी से भिन्न दर्शाने हेतु 'अभिनव' विशेषण लगाया है। आप स्वयं मुनि होने से आपने अपने पीछे 'यति' विशेषण भी लगाया है।

आपके माता–पिता, जन्मस्थान आदि का कोई उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। विजयनगर साम्राज्य स्वामी प्रथम देवराय और उनकी पत्नी भीमादेवी आपके भक्त थे व आपको गुरु मानते थे। आपकी गुरु परम्परा निम्न प्रकार से शिलालेखों के आधार से मिलती है।

मूलसंघ, नन्दिसंघ–बलात्कारगण के सारस्वत गच्छ में

पद्मनन्दि (कुन्दकुन्दाचार्य)

उन्हीं के अन्वय में

अमरकीर्ति आचार्य (जिनके शिष्यों के शिक्षक–दीक्षक सिंहनन्दि व्रती थे।)

श्री धर्मभूषण भट्टारक (द्वितीय) (सिंहनन्दि व्रती के सधर्मा)

वर्द्धमान मुनीश्वर (सिंहनन्दि व्रती के चरणसेवक)

धर्मभूषण यति (तृतीय) (न्यायदीपिकाकार)

इस तरह श्री धर्मभूषणजी के साक्षात् गुरु श्री वर्द्धमान मुनिश्वर और प्रगुरु द्वितीय धर्मभूषण हो। अमरकीर्ति दादागुरु और प्रथम धर्मभूषण परदादागुरु थे।

आपको अपने गुरु के प्रति अनन्य समर्पणता व स्नेहसह–चरणोंपासकत्व में बने रहने की तमन्ना थी। आप स्वयम् इस भांति लिखते हैं, कि यह 'न्यादीपिका' पूज्य गुरु वर्द्धमान मुनीश्वर की कृपा का फल है।

आप बहुश्रुताभ्यासी थे, यह आपकी कृति से झलकता है। आप स्वयम् न्यायशास्त्र के प्रखर विद्वत्तायुक्त ज्ञाता थे। आपको अन्यमतों का भी गहन अभ्यास था।

आपकी एकमात्र रचना 'न्यादीपिका' है; जिसमें प्रमाण प्रमाणाभासों, हेतु व हेत्वाभासों आदि का सुन्दर विवेचन है। उसमें 'प्रमाण की प्रामाण्यता' भी अच्छी तरह समझाई है। उसी भांति लक्षण व लक्षणाभासों का भी सुन्दर विवेचन किया है। आपने अपनी प्रमाण की परिभाषा रचने में श्री अकलंक आचार्य का अनुसरण किया है।

आपका समय ई.स. 1358– 1418 माना जाता है।

'न्यायदीपिका' के रचयिता आचार्य अभिनव धर्मभूषण यति को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री श्रीधराचार्यदेव

श्रीधराचार्य नामक अनेक जैन विद्वान हुए हैं। उनमें श्रुतावतार–गद्य व भविष्यदतचरित नामक ग्रंथों के रचयिता के रूप में उभरते आप एक अलग आचार्य हैं। माना जाता है कि आप अपभ्रंश में लिखित सुकुमालचरिउ के रचयिता भी हैं।

ऐसी कथा प्रसिद्ध है, कि 'बलत्के जिनमंदिर में जहाँ के शासक गोविन्दचन्द्र थे, ऐसे पद्मचन्द्र नामक एक मुनि उपदेश दे रहे थे। उपदेश में उन्होंने सुकुमालजी का उल्लेख किया। श्रोताओं में पीछे साहूका पुत्र कुमार नामक एक व्यक्ति था। उसने सुकुमालस्वामी के बारे में विशेष जानने की इच्छी व्यक्त की। मुनिराज ने कुमारों को श्रीधराचार्य से अभ्यर्थना करने को कहा। वे ही उसकी जिज्ञासा शान्त कर सकते थे; अतः कुमार ने श्रीधराचार्य को सुकुमालचरिउ रचने के लिए प्रेरित किया। जिससे आचार्यदेव ने यह ग्रंथ लिखा।

आप श्री इन्द्रनन्दि आचार्य की भांति ऐसे आचार्य हैं, कि जिन्होंने स्वयम् के लिए तनिक भी न लिखकर अन्य आचार्यों की 'श्रुतावतार' रूप पट्टावलियाँ लिख दी। जिसके बल ही इतिहासकार यत्किंचित् आचार्यों के समय, स्थिति आदि के बारे में समझ पाते हैं।

आपकी रचना उक्त श्रुतावतार गद्य, भविष्यदत्त चरित, सुकुमाल चरिउ है।

आपका समय ईस्वी की 14वीं शताब्दी का मध्यपाद प्रतीत होता है।

आचार्य श्री श्रीधराचार्यदेव भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

प्रेरक-प्रसंग

माँ का दुख नहीं देख सकता

चेहरा देखकर भविष्य बताने वाला ज्योतिषी जब चाणक्य की माता के आँगन में बैठा बातें कर रहा था,तभी पास के कमरे में से खेलते-खेलते चाणक्य वहाँ आया। चाणक्य की माता ने जब चाणक्य के भविष्य की बात पूछी तो भविष्य-वक्ता ने कहा जब उसने पानी माँगा, तब मैंने उसके दाँत देखे। ऐसे दाँत वाला राजा बनता है तथा कई लड़ाइयों में विजय प्राप्त करता है।

यह सब सुनकर जहाँ माता को हर्ष करना था, वहाँ रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर पास के कमरे से चाणक्य आया और पूछा- क्या हुआ ?तो माँ बोली- बेटा! तुम बड़े होकर कई लड़ाइयाँ जीतोगे, राजा बनोगे; पर बार-बार युद्ध पर जाओगे तो मैं मेरे इस इकलौते बेटे के बिना कैसे जीवित रहा पाऊँगी ?

यह सुनकर चाणक्य बाहर गया, पत्थर से दाँत तोड़ लिये तथा खून से भरा मुँह लेकर भीतर आया। बोला- माँ! दाँत तोड़ दिये मैंने। अब ये कैसे मेरा भविष्य बतावेंगे। भविष्य तो मेरा मैं बनाऊँगा। दाँत आड़े क्यों आने लगे। माँ मैं तुझे दुखी नहीं देख सकता।

शिक्षा- इस बात से चाणक्य का अपनी माँ की प्रति आदर व स्नेह का पता चलता है तथा माँ का अपने बेटे के प्रति भी वात्सल्य दिखता है। जो अपने बेटे को युद्ध आदि में जूझते नहीं देखना चाहती। धन्य है माँ-बेटे का एक-दूसरे के प्रति स्नेह एवं वात्सल्य।

तृतीय पुस्तक की वाचना 09 जुलाई 2021 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - विद्वान पण्डित जे.पी. दोशी, मुम्बई; प्रो. जयन्तीलाल जैन, मंगलायतन विश्वविद्यालय एवं सहयोगी बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होगा।

दोपहर	01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)	**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ**

(विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर)

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198, Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– एक लकड़हारे को बहुत भूख लगी थी और स्वप्न में गर्म–गर्म मिठाई खाई, परन्तु जहाँ जगा कि वहां तो पेट खाली ही था ।

उसी प्रकार– कोई अज्ञानी में बहुत राग करे और सुखी होना माने, परन्तु जहाँ अज्ञान मिटा तो पता चला ये राग तो महा दुख के कारण है, इनमें लेशमात्र भी शान्ति नहीं है।

जिस प्रकार– रेगिस्तान में हिरण चमकती हुई रेत को जल मानकर पीने के लिए दौड़ता है,प्यास और भड़कती है, पानी नहीं मिलता फिर मर जाता है।

उसी प्रकार– जीव इन्द्रिय विषयों में सुख मानता है, इच्छायें भड़कती है, आकुलता और दुख बढ़ते जाते है।

जैसे– जोतने योग्य बैल, माल को धरकर आगे ले जाता है।

उसी प्रकार– धर्म के धारी ज्ञानी अपने धर्म को धरकर आगे बढ़ते है।

जिस प्रकार– धोबी गन्दे कपड़ों को धोने के लिए ले जाते हुए यह जानता है कि मैल तो बाहर है कपड़े के स्वभाव में नहीं गया है। अतः दूर हो जायेगा।

उसी प्रकार– ज्ञानी यह जानता है राग द्वेष रूपी मैल भाव आत्मा की पर्याय में है, स्वभाव में नहीं है। अतः पुरूषार्थ पूर्वक दूर किये जा सकते है।

जिस प्रकार– कन्या की सगाई होते ही कैसा अभिप्राय पलट जाता है कि यह पिता का घर है, मेरा नहीं मेरा घर तो मेरे पति का घर। गजब की बात है पिता के घर रहती हुई भी अपना घर नहीं मानती। पति के घर में न रहते हुए भी उसे अपना घर मानती है।

उसी प्रकार– धर्मी की सगाई स्वभाव के साथ हो गई है। इस कारण वह राग में खड़ा होने पर भी उसको राग में एकत्व नहीं होता, उसको तो स्वभाव में ही एकत्व पना है। राग के अभाव होने में समय लगता है। परन्तु दृष्टि तो चैतन्य स्वभाव पर ही स्थापित रहती है।

जिस प्रकार – संसार का रागी जीव स्त्री–पुत्रादि के मुँह को अथवा चित्र को प्रेम से देखता है।

उसी प्रकार– धर्म का रागी जीव वीतराग प्रतिमा का दर्शन अर्थात् प्रेम एवं भक्ति सहित करता है।

जिस प्रकार– प्रिय पुत्र– पुत्री को देखे तो माता को चैन नहीं पड़ता अथवा बालक माता को न देखे तो बालक को चैन नहीं पड़ता।

उसी प्रकार– भगवान के दर्शन बिना धर्मात्मा को चैन नहीं पड़ता, अरे रे आज मुझे दर्शन न हुए, आज मैंने मेरे भगवान को नहीं देखा, मेरे प्रिय नाथ के दर्शन आज मुझे नहीं मिले। चेलना रानी को श्रेणिक के राज्य में बिना जिन दर्शन चैन नहीं पड़ता था। जिन बिम्ब दर्शन को तो सम्यग्दर्शन का निमित्त कहा है।

क्रमशः संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

उत्तर प्रदेश हाईकोर्ट के
मुख्य न्यायाधीश मङ्गलायतन दर्शनार्थ पधारे

तीर्थधाम मङ्गलायतन : न्यायमूर्ति मुनिश्वरनाथ भण्डारी दिनांक 3 अक्टूबर 2021 को तीर्थधाम मङ्गलायतन में दर्शनार्थ पधारे।

मङ्गलायतन के मुख्य गेट पर उत्तरप्रदेश शासन द्वारा न्यायमूर्ति भण्डारी को गार्ड ऑफ ऑनर दिया गया। पश्चात् मङ्गलायतन के महासचिव श्री स्वप्निल जैन द्वारा अगवानी की गयी। भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के प्राचार्य डॉ. सचिन्द्र जैन द्वारा अंगवस्त्र एवं तिलक लगाकर स्वागत किया गया। तत्पश्चात् मानस्तम्भ, महावीर मन्दिर, कैलाशपर्वत पर स्थित आदिनाथ भगवान के दर्शन करते हुए बाहुबली मन्दिर में भगवान भरत एवं बाहुबली के दर्शन का लाभ प्राप्त किया। इस अवसर पर सभी मन्दिरों का परिचय विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों पर दिया गया। अन्त में ऋषभ जैन द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ का सेट एवं मङ्गलायतन का छायाचित्र भेंट किया गया।

इसी अवसर पर अलीगढ़ एवं हाथरस जिले के जिला जज अधिकारी भी पधारे।

तीर्थधाम चिदायतन में
पंच परमेष्ठी विधान सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : शान्तिनाथ जिनालय में सहारनपुर मुमुक्षु मण्डल द्वारा श्री पंच परमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया। जिसका ध्वजारोहण श्री मुकेश जैन परिवार अलीगढ़ द्वारा किया गया। सम्पूर्ण विधान श्री संजीवजी उस्मानपुर, पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित चैतन्य शास्त्री कोटा, पण्डित मधुवन शास्त्री मुजफ्फरनगर, पण्डित अनेकान्त शास्त्री एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा सम्पन्न कराया गया। इस अवसर पर ट्रस्ट के उपाध्यक्ष श्री जे.के. जैन, श्रीमती बीना जैन, देहरादून, श्री मुकेश जैन, अलीगढ़ आदि ट्रस्टीगणों की तथा संयुक्त सचिव श्री आदीश जैन दिल्ली की गरिमामयी उपस्थिति रही।

विधान के पश्चात् डॉ. मनीष जैन, मेरठ का मार्मिक व्याख्यान और अन्त में विधान संयोजक श्री कल्पेन्द्र जैन, खतौली ने चिदायतन परिवार, उपस्थित ट्रस्टीगण, कार्यकारिणी समिति व सभी साधर्मियों का धन्यवाद ज्ञापित किया।

इस अवसर पर मवाना, मेरठ, अलीगढ़, भिण्ड, गुरुग्राम, नोएडा, दिल्ली, खेकड़ा, बिनौली, शामली, मुजफ्फरनगर, खतौली, सहारनपुर, देहरादून व जयपुर से पधारे हुए साधर्मी भाई-बहिनों ने धर्म लाभ लिया।

मङ्गल विद्यापीठ एप्प लाँच

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित ऑनलाईन मङ्गल विद्यापीठ पाठ्यक्रम का प्रथम सत्र के मङ्गलार्थियों का सम्मान दिनांक 10 अक्टूबर 2021 को ग्रेजुऐशन सेरेमनी कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमें चार सदनों प्रशम, आस्तिक्य, संवेग, अनुकम्पा—मंगल विद्यापीठ के ये चार सुदृढ़ स्तम्भ हैं और इन चार सदनों में सर्वश्रेष्ठ सदन का पुरुस्कार अनुकम्पा सदन को प्रदान किया गया।

मङ्गल विद्यापीठ उपक्रम से करीब 400 मङ्गलार्थी छात्र-छात्रायें, माताएँ-बहिनें, साधर्मी भाई—मङ्गल प्रज्ञा 1-2-3, मङ्गल शासन 1-2, मङ्गल प्रभावना 1-2, मङ्गल बोधि, द्रव्यसंग्रह, पुरुषार्थसिद्धिउपाय आदि पाठ्यक्रम का लाभ ले रहे हैं। सभी पाठ्यक्रम का रिजल्ट सुनाया गया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री अजितप्रसाद जैन, दिल्ली; विशिष्ट अतिथि श्री अजित जैन, बड़ौदा; श्री अनिल जैन, बुलन्दशहर; श्रीमती शीतल वी. शाह, लन्दन; श्री जैनबहादुर जैन, कानपुर आदि के मंगल उद्बोधन में मङ्गलायतन द्वारा संचालित मंगल विद्यापीठ टीम—सौधर्म लुहाड़िया, शालीन जैन, अनुभव जैन करेली, शान्तनु जैन, सम्यक् जैन, अनुभव जैन आदि 'आत्मा' ग्रुप के सहयोग से मङ्गल विद्यापीठ एप्प का शुभारम्भ किया गया।

इस उपक्रम की विशेषतायें—समृद्ध, अभिनव, व्यवस्थित पाठ्यक्रम, मनमोहक स्टडी, नि:शुल्क घर पर ही संप्रेषित,

- प्रोफेशनल मंगलार्थियों द्वारा आधुनिक, सरल, अत्यन्त रोचक, एवं आकर्षक शैली में अध्यापन।
- श्रुत—ओलम्पियाड, क्विज एवं रचनात्मक प्रतियोगिताएँ।
- विद्यार्थी की अनुकूलतानुसार कक्षायें एवं नूतन-रम्य प्रायोगिक शिक्षण पद्धति
- सभी वर्ग के लिये कक्षायें
- सभी की रुचि के अनुसार विषय
- मूल ग्रन्थों पर आधारित स्पेशल कोर्सेज
- प्रतिभा-प्रमाण पत्र तीर्थधाम मङ्गलायतन (रजि.) ट्रस्ट द्वारा

उद्देश्य - हर घर मङ्गलार्थी, घर घर मङ्गलायतन

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं.....

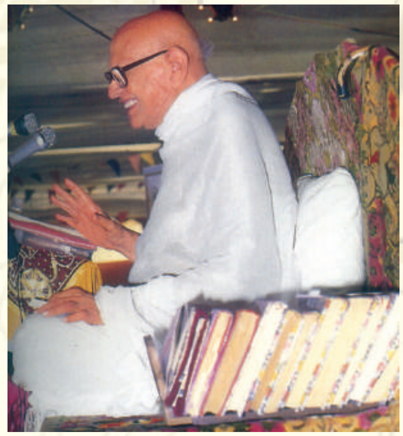

मुनिराज स्वयं साक्षात् मोक्षमार्ग हैं। **'मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं।'** हम अनुभव करके कह रहे हैं कि ऐसा ही मुनिमार्ग होता है। छठवें-सातवें गुणस्थान में बारम्बार झूलते हुए शुद्धोपयोगरूप का अनुभव करके कह रहे हैं कि मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं। मुनिराज ने परमेश्वर की विद्या को प्राप्त करके अत्यन्त मध्यस्थ होकर सर्व पुरुषार्थ में सारभूत होने से जो आत्मा को अत्यन्त हितरूप है - ऐसी मोक्षलक्ष्मी को ही निरन्तर उपादेयरूप निर्णय किया है।

(दिव्यध्वनिसार भाग 2, पृ०-320-321)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com